भूगोल, स्कूली किताबें और कुछ अनुभव

यमुना सनी

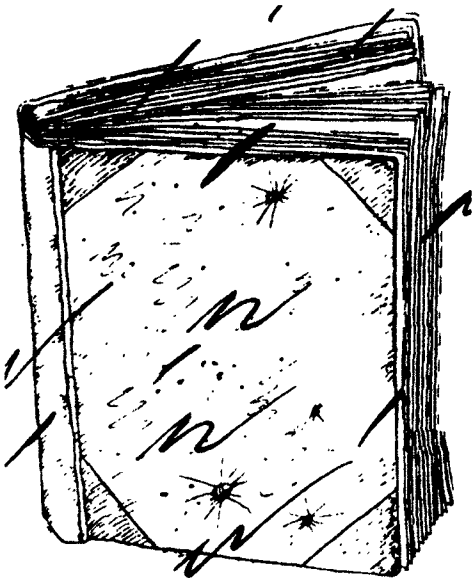

किसी भी शिक्षण व्यवस्था के लिए पर्याप्त साधन-सुविधाएं तथा सभी लोगों के लिए स्कूलों की सुलभता तो एक महत्वपूर्ण पहलू है ही। लेकिन क्या सीखने की ज़रूरतें इतने में पूरी हो जाती हैं? क्या यह सब होने पर निश्चित हो जाता है कि वहां अच्छी पढ़ाई होगी ही?

केरला, जहां व्यवस्था को लेकर काफी अनुकूल परिस्थितियां है, के उदाहरण के सहारे भूगोल की कुछ अवधारणाओं को समझाने के तरीके पर सवाल।

कभी-कभार अपने खुद के बचपन के स्कूली अनुभवों की याद ताज़ा करने से बच्चों की सीखने की प्रक्रियाओं को समझने में मदद मिल जाती है। ऐसी कौन-सी बातें थीं, जो सहजता से याद रह जाती थीं? ज़्यादा कुछ याद न भी आए पर यह तो अच्छी तरह से याद है कि वो सब जो थोड़ा-सा भी मुश्किल होता दिमाग में घुसता ही न था। रटकर याद करना सदा ही बहुत मुश्किल लगता था, इसलिए एक कक्षा पास करके दूसरी में पहुंचना कभी भी आसान नहीं रहा।

बाद में कॉलेज के ज़माने में खुद भूगोल पढ़ते हुए कई ऐसे शिक्षकों और विद्यार्थियों से समय-समय पर सामना हुआ जिनके मन में यह सवाल उठता रहता था कि भूगोल में पढ़ाई जाने वाली बहुत-सी बातें कैसे समझाई जाएं, कैसे समझी जाएं। शायद कई कारण होंगे जिसकी वजह से विद्यार्थियों को भूगोल की बहुत-सी अवधारणाएं मुश्किल लगती हैं। यह भी अक्सर सुनने में आता है कि अगर शिक्षक रोचकता से, उस विषय में रुचि लेते हुए पढ़ाए तो ऐसी स्थिति बनेगी ही नहीं। शायद सही है। पर यह भी याद

रखना ज़रूरी है कि शिक्षक खुद पाठ्य-पुस्तक और परीक्षा के दायरे में बंधा होता है। ज़्यादातर शालाओं में बच्चों की शिक्षा का एक मात्र ज़रिया पाठ्य-पुस्तकें ही होती हैं। एक तरह से स्कूली शिक्षा पाठ्य-पुस्तकों के दायरे में बंध-सी जाती है। इसलिए भी क्योंकि परीक्षा भी सिर्फ उन सब बातों पर आधारित होती है जो पाठ्य-पुस्तकों में लिखी होती हैं। इसीलिए शिक्षा के अन्य पहलूओं के साथ-साथ पाठ्य-पुस्तकों का आकलन और मूल्यांकन भी उतना ही ज़रूरी है।

केरला में शैक्षणिक सुविधाएं

जब कभी हम किसी अच्छी शैक्षणिक प्रणाली की बात करते हैं तो आमतौर पर हम सबका आशय वहां पाई जाने वाली साधन-सुविधाओं से ही होता है। दूर-दराज़ इलाकों में भी स्कूल हों ताकि बच्चे उनमे जा सकें, शिक्षक एवं ब्लैक-बोर्ड उपलब्ध हों इत्यादि। हम उस आदर्श प्रणाली की दिशा में कार्य करना चाहते हैं जहां स्कूल में बच्चों की उपस्थिति का आंकड़ा बढ़ता चला जाए तथा बच्चों की अधबीच स्कूल छोड़ने की प्रवृति कम-से-कम हो। हमारी व्यवस्था भी तो यही चाहती है कि लड़के-लड़कियां स्कूलों में उपस्थित हों तथा बाल-श्रमिकों की संख्या कम हो ताकि बच्चों को स्कूल जाने की आज़ादी मिल सके।

ऊपर गिनाई गई बातों में से बहुतेरी केरला की शिक्षा व्यवस्था में मौजूद हैं। जहां तक बच्चों के लिए स्कूल की सुविधा का सवाल है तो केरला में ग्रामीण और

शहरी दोनों क्षेत्रों में स्कूल बहुतायत में हैं।

किसी भी शिक्षण व्यवस्था के लिए पर्याप्त साधन-सुविधाएं तथा सभी लोगों के लिए स्कूलों की सुलभता तो एक महत्वपूर्ण पहलू है ही। परन्तु क्या सीखने की ज़रूरतें इतने में पूरी हो जाती हैं? क्या यह सब होने पर निश्चित हो जाता है कि वहां अच्छी पढ़ाई होगी ही? अगर ऐसा ही होता तो केरला जैसी जगहों में भी हम अपने-आपको ऐसी स्थिति में क्यों पाते जहां बच्चे किसी-न-किसी तरह से परीक्षा-रूपी बाधा को पार करने में लगे हुए हैं, जबकि वहां ये सब सुविधाएं उपलब्ध हैं। क्या केरला व अन्य जगहों की शिक्षण व्यवस्था बच्चों में खोजी प्रतिभा को विकसित करने का या उन्हें सीखने का मौका देती है? क्या ऐसी स्थितियां हैं कि बच्चे वास्तव में सीख सकें? क्या इस व्यवस्था में शिक्षकों को छूट है कि वे ऐसी सब गतिविधियां कर सकें, करवा सकें जो बच्चों को कुछ भी सिखाने के लिए लाज़िमी हैं?

और जहां तक पाठ्य-पुस्तकों का सवाल है उनकी एक ही मुख्य भूमिका दिखाई देती है जो बच्चों को केवल परीक्षा की तरफ धकेलती है। और इन परिक्षाओं में सफलता से ही बच्चे के भावी कैरियर का फैसला होता है। इस तरह हमारी शिक्षा प्रणाली में पाठ्य-पुस्तकों की एक अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका बन गई है। हम यहां इन पाठ्य-पुस्तकों में से कुछ उदाहरणों की समीक्षा करेंगे। आइए, केरला की पाठ्य-पुस्तकों में भूगोल की स्थिति पर नज़र डालें।

केरला की भूगोल की पाठ्य-पुस्तकों की समीक्षा

1. कब क्या सिखाना

भूगोल की पाठ्य-पुस्तकों की विषयवस्तु को दो समूहों में बांटा जा सकता है। इनमें से एक में उन विषयों को शामिल कर सकते हैं जो आसानी से अपने आसपास देखे जा सकते हैं।

इस पहले समूह के विषय बिन्दुओं में नदियां, क्षरण, दिन और रात, जल एवं थल हवाएं, चक्रवात जैसे विषय आते हैं। दूसरे समूह में शामिल विषय बिन्दु ऐसे हैं जिन्हें हम रोज़मर्रा की ज़िंदगी में

महसूस नहीं कर पाते, या जिनका हम आसानी से निरीक्षण नहीं कर पाते। केरला की भूगोल की पाठ्य-पुस्तक का अधिकांश भाग इस दूसरे समूह के अंतर्गत आता है जिसमें वायु दाब की पेटियां, समुद्री धाराएं, अक्षांश और देशांतर, पृथ्वी की गतियां आदि शामिल हैं।

पहले समूह में शामिल विषय बिन्दु ऐसे हैं जिनका आसानी से अवलोकन कर पाना संभव है। लेकिन पाठ्य-पुस्तकों में अवलोकनों के माध्यम से इन्हें सिखाने की कोशिश कतई नहीं होती। दूसरे किस्म के विषयों को समझने के लिए अमूर्त कल्पना कर पाना बेहद ज़रूरी है। उदाहरण के लिए गोलाकार पृथ्वी की कल्पना करना जो अपने अक्ष पर झुकी है और अपनी धुरी के इर्द-गिर्द चक्कर लगाने के साथ-साथ सूर्य का चक्कर भी लगा रही है। ऐसी स्थितियों की हमें कल्पना करनी होती है क्योंकि इन्हें हम प्रत्यक्ष देखकर समझ नहीं सकते। भूगोल में ऐसे सब अमूर्त विषय आमतौर पर उन अध्यायों में आ जाते हैं जिन्हें भूगोल सीखने के लिए निहायत ज़रूरी माना जाता है। और इसलिए ये अमूर्त विषय भी निचली कक्षाओं में घुस आते हैं, जिससे मामला और भी गम्भीर हो जाता है।

ऐसी स्थिति को देखते हुए अपने-आप कुछ बुनियादी सवाल उठ जाते हैं – बच्चों की पाठ्य-सामग्री में क्या होना चाहिए और उसे तय करने के लिए क्या प्रक्रिया होनी चाहिए? पाठ्य-सामग्री को ऐसा कैसे बनाया जाए कि बच्चे और शिक्षक उसका आसानी से और रुचिपूर्वक उपयोग कर सकें? साथ-ही-साथ यह सवाल भी कि पाठ्य-पुस्तकें बच्चों के लिए स्वयं खोज करने एवं सीखने का माध्यम कैसे बन सकती हैं?

कहां क्या शामिल है

बच्चों को क्या पढ़ाना चाहिए, कैसे पढ़ाना चाहिए जैसे सवालों के संदर्भ में शायद अनेक बातों पर ध्यान देने की आवश्यकता होगी। विशेष तौर पर ज़रूरत है कि पाठ्य-पुस्तकें बनाने की प्रक्रिया में शिक्षा के बहुत-से अन्य पहलुओं को न सिर्फ शामिल किया जाए, बल्कि एक महत्वपूर्ण जगह दी जाए। उदाहरण के लिए बच्चों से संपर्क, अवधारणाओं को समझाने के लिए अलग-अलग तरीकों की पहचान (जिनमें अवलोकन, गतिविधियां, आपसी बातचीत के साथ-साथ कई और तरीके हो सकते हैं), शिक्षकों का योगदान आदि।

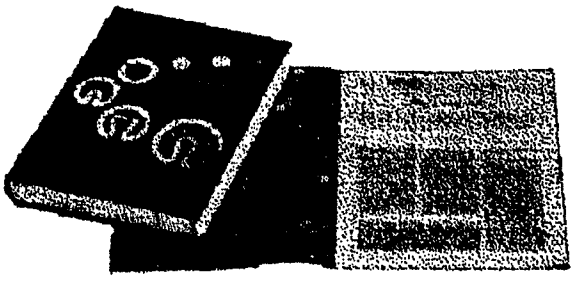

इस प्रक्रिया में इस बात का भी ध्यान रखना होगा कि विभिन्न आयु वर्ग के बच्चों की क्षमताएं भी अलग-अलग होती हैं। स्कूली बच्चों के साथ अपने कुछ अनुभवों का ज़िक्र करने से समझने में शायद मदद मिलेगी।

स्कूलों में भूगोल सीखने की स्थिति का सर्वे करते समय हमने बच्चों से चर्चाएं और सामूहिक बातचीत के लिए भी समय रखा था। इस सर्वे में 'मौसम' भी एक विषय था। छठवीं कक्षा के बच्चों के साथ चर्चा के दौरान उन्होंने अधिकतर वो सब बातें कही जो प्रत्यक्ष अवलोकनों पर आधारित थीं। जैसे साल के किन महीनों में मौसम अलग-अलग पाया जाता है, ठंड एवं गर्मी में दिन और रात की लम्बाई में फर्क, लोग अलग-अलग मौसमों में क्या-क्या काम करते हैं (जैसे खेती संबंधी अलग-अलग गतिविधियां) आदि। लेकिन जब भी कोशिश की गई कि बच्चे इन अवलोकनों का पृथ्वी की गति या उसके झुकाव से संबंध जोड़कर कुछ कहें तो बच्चों में एकदम चुप्पी छा जाती।

बातचीत का दूसरा दौर दसवीं कक्षा के बच्चों के साथ किया गया। यहां बच्चों ने मौसम के बदलाव का संबंध पृथ्वी की गतियों से जोड़कर देखने की कोशिश की। यह छोटे बच्चों के साथ के अनुभवों से एकदम अलग था जो इस दिशा में कुछ भी कह या सोच ही नहीं पा रहे थे।

इस सर्वेक्षण के दौरान यह एकदम उभरकर आई कि उम्र के साथ-साथ अमूर्त बातें समझने और सोच पाने की क्षमता में कितना अंतर आ जाता है। हमारी ज़्यादातर पाठ्य-पुस्तकों में इस पहलू को एकदम नज़रअंदाज़ किया जाता है।

2. भाषा और बच्चों की उलझन

पाठ्य-पुस्तकों की भाषा काफी उलझाव से भरी होती है। कभी भी यह कोशिश नहीं की जाती कि किसी मुद्दे को विस्तार से समझाया जाए। अक्सर जटिल अवधारणाओं को मात्र एक या दो वाक्यों में निपटा दिया जाता है। यह भी लगता है कि मुख्य ज़ोर शब्दावली पर दिया जा रहा है, बनिस्बत अवधारणाओं के। यह बात पूरी पाठ्य-पुस्तक पर लागू होती है। उदाहरण के लिए कक्षा-7 के 'प्रमुख भौगोलिक रचनाएं' पाठ को देखते हैं। इस अध्याय में भौगोलिक क्षेत्रों को विभिन्न किस्मों में बांटा गया है – अवशिष्ट पहाड़, अंतरपर्वतीय पठार, उन्नत तटीय मैदान, अपरदन मैदान आदि। प्रत्येक को संक्षिप्त में 8-10 वाक्यों में समझाया गया है। बाद के वायुमंडल की संरचना, तापमान एवं दबाव पट्टियां जैसे अध्यायों में तो और भी जटिल अवधारणाओं को एक-एक छोटे से पैरा में निपटा दिया गया है। ऐसे संक्षिप्त वर्णन से बच्चों के मन में क्या छवि बनती होगी?

सातवीं कक्षा के ही एक अन्य अध्याय 'मौसम एवं जलवायु' को देखें। एक हिस्से में लिखा है, *'विभिन्न जीव-जंतुओं का वितरण जलवायु संबंधित कारकों पर निर्भर करता है। कृषि, सिंचाई, यातायात, उद्योग और मनुष्य की अन्य आर्थिक गतिविधियां भी जलवायु से नियंत्रित होती हैं।'* आपकी भी अपेक्षा होगी कि इसके बाद इन कथित संबंधों की समझ बनाने की कोशिश की जाएगी – कि सिंचाई और यातायात जलवायु से कैसे प्रभावित होते हैं। परन्तु किताब का कथानक इस सबके लिए रुकता थोड़े ही है। इस तरह से संक्षिप्त, जटिल वाक्यों का आखिर में अर्थ यह निकलता है कि बच्चों को प्रत्येक कक्षा में बहुत सारी जानकारी और तथ्य याद रखने पड़ते हैं। उन सबके बारे में सोचने, समझने, दिमाग में एक छवि बना पाने आदि का मौका मिलने का तो सवाल ही नहीं पैदा होता। (इससे काफी हद तक कक्षा में शिक्षक की भागीदारी की प्रकृति भी निर्धारित हो ही जाती है।) ऐसी प्रक्रियाओं की अनुपस्थिति बच्चों की सीख पाने की सब संभावनाओं को खत्म कर देती है।

'विश्व के देशों' के बारे में जितने पाठ हैं उन सब में भी इसी

आस्ट्रेलिया के आदिवासी; बूमरेंग लिए हुए (इन्सेट में)

तरह की कमियां हैं। मज़ेदार बात यह है कि विभिन्न देशों को पढ़ाने के लिए जिन उपशीर्षकों का इस्तेमाल किया जाता है, वे इन सब पाठों में एक समान होते हैं – जैसे कि उद्योग, कृषि, जलवायु, पशुपालन आदि। इससे इन अलग-अलग देशों के बारे में हमारे मन में कोई स्पष्ट, विशिष्ट छवि नहीं बन पाती।

स्वाभाविक है, इन सबसे हमारे मन में यह सवाल उभरता है कि ये पुस्तकें किस हद तक जो कहना चाहती हैं वो बच्चों तक पहुंच पाता है। और इसीलिए पाठ्य-पुस्तकों को बच्चे कभी भी रुचि के कारण या मज़ा आ रहा है, इसलिए पढ़ते दिखाई नहीं देते।

3. 'दुनिया के लोग'

प्रादेशिक भूगोल के अंतर्गत आने वाले अध्यायों में विश्व के अलग-अलग स्थानों में रहने वाले लोगों की जीवन शैली की चर्चा की गई है। पुस्तकों में कुछ अध्याय हैं जो विश्व के विभिन्न देशों से संबंधित हैं। छठवीं से दसवीं कक्षा तक की पढ़ाई के दौरान बच्चे एक दर्जन से ज़्यादा देशों के बारे में पढ़ते हैं। यह देखा गया है कि अलग-अलग तरह की जलवायु में रहने

वाले लोगों की विशेषताओं तथा जीवन शैली के बारे में गंभीरता पूर्वक चर्चा नहीं की गई है। जिस तरह से उनके बारे में लिखा होता है उससे समझ की कमी साफ झलकती है।

आस्ट्रेलिया पर लिखे गए पाठ में यह बात उभरकर सामने आती है। यह पाठ छठवीं कक्षा में पढ़ाया जाता है जिसमें आस्ट्रेलिया के आदिवासियों के बारे में चर्चा की गई है। उसके कुछ अंश प्रस्तुत हैं;

"ये आदिवासी काले और नाटे लोग हैं। वे शिकार और खाद्य-संग्रह करके अपना जीवन यापन करते हैं। ये लोग एक विचित्र किस्म का हथियार इस्तेमाल करते हैं जिसे बूमरेंग कहते हैं। ..... गोरे लोगों और गोरे लोगों के रीति-रिवाज़ों का इन लोगों की जीवन शैली पर बहुत प्रभाव पड़ा है। सरकार ने इन लोगों के विकास के लिए कई योजनाएं शुरू की हैं।"

जो लोग हम जैसे नहीं दिखते और जिनकी जीवन शैली हमसे अलग है उनके बारे में एक अजीबो-गरीब समझ का ही यह उदाहरण है।

भूगोल में हमेशा से यह मान्यता रही है कि पृथ्वी के विभिन्न भागों की जलवायु आदि का वहां के लोगों के रहन-सहन से करीब का संबंध होता है। लेकिन ऊपर के पैरा में बताई बातें ऐसे किसी सहसंबंध का परीक्षण नहीं करती।

प्राकृतिक भूगोल के कुछ अध्यायों में भौगोलिक रचनाओं और मनुष्य के बीच संबंध बताने के प्रयास दिखते हैं। एक अध्याय में मनुष्य और पहाड़, पठार व मैदान जैसी भौगोलिक रचनाओं के बीच जुड़ाव दिखाए गए हैं। भूगोल में ऐसे सहसंबंध का ज़िक्र स्वाभाविक ही है। परन्तु इन अध्यायों में भी बारीकियों में जाने के बजाए, केवल कुछ मोटी-मोटी बातों तक ही सीमित रखा गया है उन्हें। उदाहरण बतौर, पहाड़ी इलाकों और मनुष्य के लिए केवल यह कहा गया है कि वहां के लोगों का जीवन-स्तर नीचा होता है, आबादी कम होती है और अपर्याप्त कृषि उत्पादन। वहां की मिट्टी, बारिश, ऊंचाई, तापमान आदि पर चर्चा नहीं की गई – जिनसे निर्धारित होता है कि किसी भी इलाके में लोग खेती के कौन-से तरीके अपनाएंगे। वहां के लोग जीवन-यापन के लिए करते क्या हैं? या फिर पहाड़ी इलाकों में रहने वाले लोगों की ज़िंदगी में पशुपालन और ऐसी अन्य गतिविधियों का क्या महत्व है? ऐसे सब सवालों और पहलुओं का कोई ज़िक्र नहीं मिलता इन अध्यायों में।

जांच-परख की ज़रूरत

जब तक हमारे स्कूलों में सवाल पूछने या चर्चा करने का माहौल नहीं है तब तक स्कूली बच्चे यही मानकर चलेंगे कि जो भी बातें पाठ्य-पुस्तक में होती हैं उन्हें ज्यों का त्यों मान लेना चाहिए। इन हालातों में पाठ्य-पुस्तकें कहीं ज़्यादा गौर से लिखे जाने और जांचने-परखने की ज़रूरत है।

(यमुना सनी – एकलव्य के सामाजिक अध्ययन कार्यक्रम से संबद्ध।)